International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 105-107

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में वैयक्तिक बोध

डॉ0 राजेन्द्र सिंह

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जनता कॉलेज, चरखी दादरी, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

''रूकता नहीं कभी गति का पहिया
अविरल चलता विकास का क्रम
वह पास लिए आता है मनुज समाज नया
जब दुख की सत्ता भर जायेगी
पीले बासी फूलों–सी।''[1]

समय चक्र सदैव ही गतिमान रहता है। परिवर्तन की इस बयार में जो व्यक्ति समय की गति को पहचान कर उसके अनुरूप चलता है वह विकास के चरम–शिखरों को स्पर्श कर लेता है और जो प्राणी इस गतिमयता को पहचान नहीं पाता, वह पिछड़ जाता है। अतः दोनों ही स्थितियों में व्यक्ति प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। विकास की ओर अग्रसर व्यक्ति नये समाज का निर्माता बनता है और पिछड़े व्यक्ति का समाज और परिवेश कुछ भिन्न रूप–स्वरूप प्राप्त कर लेता है। अब एक नए समाज का निर्माण हो जाता है। विकास की ओर अग्रसर व्यक्ति भौतिक उन्नति और प्रगति करने के लिए दूसरे लोगों से प्रतिस्पर्धा करता है और यंत्रवत् कार्य भी करता है। इस क्रम में उसके पारिवारिक–सामाजिक संबंध शिथिल पड़ जाते हैं। जिसके फलस्वरूप व्यक्ति के जीवन में अनेक समस्याएँ पनपने लगती हैं। साथ ही साथ आर्थिक रूप से विपन्न व्यक्ति की समस्याएँ कुछ भिन्न हैं, उसकी जीवन शैली भी भिन्न है। अतः समाज अमीर और गरीब दो वर्गों में बँट गया था। उस समय '' आर्थिक दशा तंगी पर थी। निम्न मध्य वर्ग सबसे अधिक दयनीय था। रोजमर्रा की छोटी–छोटी जरूरतें मन को चोट पहुँचाने लगी थी। जो मन पहले ऊँचे आदर्शों के पंखों पर उड़ा करता था, उस पर छोटी–छोटी भौतिक बातों का बोझ पड़ चला था। घर बाजार में बिकने को जो पड़ा था, दुकान रसोई घर को ग्रसने लगी थी। नैतिक दृष्टि से यह पतन का युग था।''[2] वास्तव में, इस युग में संघर्ष और विद्रोह केवल सामाजिक स्तर पर ही नहीं अपितु राजनीतिक स्तर पर भी दिखाई देने लगा था।

प्रयोगवाद के सशक्त हस्ताक्षर, कवि गिरिजाकुमार माथुर ने युगीन परिवेश को निकट से देखा है। आज व्यक्ति का जीवन निराश–हताश है, कुण्ठित है। उसने भूख और गरीबी को करीब से अनुभूत किया है। साथ ही सामंती शासन–व्यवस्था के अन्याय और अत्याचार को भी देखा–भोगा है। इस अनुभूति की अभिव्यक्ति कवि गिरिजाकुमार माथुर ने इस प्रकार की है–

'' हमने जीवन की ज्वाला में
पाप जलाया सदियों का
इस महायज्ञ से निकला है
यह कुलिश नवीन अस्थियों का
मेरी मानवता पर रखा गिरि या
सत्ता का सिंहासन
मेरी आत्मा पर बैठा है
विष–धर सा सामन्ती शासन।''[3]

कवि माथुर ने दीन–हीन और शोषित जन के प्रति गहरी संवेदना प्रकट की है। वे दलित–पीड़ित प्राणी को संघर्ष के लिए प्रेरित करते हैं, क्रांति का आह्वान करते हैं ताकि जन–मन को शोषण से मुक्ति मिल सके। जिसके फलस्वरूप वह अपने जीवन–स्तर को उन्नत कर सके–

''यह व्यक्ति और समाज का उतृप्त मंथनकाल है
संक्रांति की घड़िया बनी हैं शृंखला
बंदी हुई है देह
मन को बाँधने बढ़ते पतन के हाथ हैं।''[4]

उच्च वर्ग के लोग स्वार्थ के वशीभूत होकर पर्याप्त मात्रा में सामान्य जन का शोषण करते हैं,उसके साथ अन्याय करते हैं परन्तु जब वह सारी हदें पार कर जाता है तो व्यक्ति के पास क्रांति के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं बचता। गिरिजाकुमार माथुर जी कहते हैं–

''तू धुँआ बनकर रहेगा और कब तक
एक क्षण जल जा भभक कर।''[5]

व्यक्ति के जीवन में यौन–चेतना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह सुख का आधार भी है। इसी से जीवन सतत् रूप से विकासमान एवं प्रवाहमान रहता है। ''जीवन की क्षणभंगुरता के विश्वास ने इस अभिवृत्ति को उत्पन्न किया कि इस अल्पकाल में जितना सुख भोग सकते हो, भोग लो।''[6] आज व्यक्ति भोगवादी संस्कृति में विश्वास करता है। जिसमें अधिकाधिक शारीरिक सुख प्राप्त करने की लालसा रहती है। 'रेडियम की छाया' नामक कविता में अंतरंग प्रेमालापों को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

''उन्हीं रेडियम के अंकों की लघु छाया पर
दो छांहों का वह चुपचाप मिलन था
उसी रेडियम की हल्की छाया में
चुपके का वह रूका हुआ चुंबन अंकित था–
कमरे की सारी छांहों के हल्के स्वर–सा
पड़ती थी जो एक दूसरे से मिल गुंथकर
सूनी–सी उस आधी रात।''[7]

माथुर ने काव्य में प्रेम और सौंदर्य का सजीव वर्णन प्रस्तुत कर काम–भाव को उद्दीप्त करने वाले चित्र उकेरे हैं। इनकी 'चूड़ी के टुकड़े' नामक कविता में मर्यादित ऐन्द्रियानुभूति एवं मिलन– यामिनी के यथार्थ चित्र पाठक के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किये हैं–

''एक सिल्क के कुर्ते की सिलवट में लिपटा
गिरा रेशमी चूड़ी का
छोटा–सा टुकड़ा
उन गोरी कलाइयों में जो तुम पहिनें थीं
रंग भरी उस मिलन रात में।''[8]

व्यक्ति को अतीत के स्वर्णिम पलों की स्मृति रह–रहकर आती है। प्रणय–व्यापार के समय प्रियतमा की लज्जा का वह दृश्य उसकी आँखों में रह–रहकर तैरने लगता है। यथा–

मैं वैसा का वैसा ही
रह गया सोचता
पिछली बातें
दूज कोर से उस टुकड़े पर
तिरने लगी तुम्हारी सब लज्जित तस्वीरें
सेज सुनहरी
कसे हुए बंधन में चूड़ी का झर जाना
निकल गई सपने जैसी वे मीठी रातें।''[9]

गिरिजाकुमार माथुर ने अपने काव्य में मर्यादित परिपक्व और प्रणय के मुक्त व्यापारों के आस्वाद्य को अपना वर्ण्य–विषय बनाया है क्योंकि आज व्यक्ति काम–वासना को अधिक महत्त्व देने लगा है। ''प्रणय के संबंध में छायावादी परिवृत्त ने कवियों की भाँति नया कवि झिझक या कैशोर का अनुभव नहीं करता और न ग्लानि के भाव का। पिछले कवि नर–नारी के कोमल, अंतरंग प्रेमालापों को बहुत छिपा कर दूर स्थित, वायवीं संकेतों से व्यक्त किया करते थे, मानों कोई अपराध कर रहे हों। नए कवियों में यह अपराध भावना बिल्कुल नहीं है। उसने अधिक आश्वस्त परिपक्व एवं मुक्त रूप में प्रणय के आस्वाद को व्यक्त किया है।''[10] अतः नए काव्य में वैयक्तिक यौन–चेतना के चित्र पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।
इस प्रकार भारतीय सभ्यता और संस्कृति लगातार रूप से परिवर्तन की ओर अग्रसर है। उस पर पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा है। व्यक्ति– स्वातंत्र्य की भावना ने भारतीय पारिवारिक व्यवस्था को प्रभावित किया। फलतः संयुक्त परिवार प्रणाली विखण्डित हुई और उसका स्थान एकाकी परिवार ने ले लिया। अतः इस प्रक्रिया का प्रभाव लगभग प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचा, जिससे अनेक समस्याओं ने जन्म लिया। परोपकार का स्थान स्वार्थ और छल–कपट ने ले लिया। व्यक्ति के अन्तस् से संवेदना पलायन कर गई। माथुर जी कहते हैं–

''इंसानों को रोबोटों में परिवर्तित कर
भाव भरे चेहरों के बदले
घड़ियों के ड़ायल या डू नट लगा दिए हैं।''[11]

ऐसे परिवर्तित परिवेश में कवि लोगों को स्वार्थ भाव त्याग कर परमार्थ का संदेश देते हैं ताकि मानव–जीवन सुख–समृद्धि की ओर अग्रसर हो सके। जीवन की इस भागदौड़ में व्यक्ति को अनेक समस्याओं ने घेर लिया हैं। माथुर जी इन समस्याओं के निवारण की कामना करते हैं–

''ढ़ेर ढ़ेर पीले पत्तों की तरह
ये मेरे रोग
चिंताएँ
तकलीफें
अवहेलनाएँ
क्यों नहीं पूरी–पूरी गिर जाती
साल में एक बार।''[12]

कवि ने अपनी कविताओं में व्यक्ति की वेदना–संवेदना यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। साथ ही तत्कालीन परिवेश की आर्थिक दशा और वर्ग–वैषम्य को अपना वर्ण्य–विषय बनाया। माथुर जी के काव्य में ''मध्यवर्ग की अनुभूतियों को ही आधार बनाया गया है इसलिए इनमें एक ओर स्वानुभूति की सच्चाई है और दूसरी ओर अभिव्यक्ति में आक्रोश का सर्वथा अभाव है।''[13] कवि भावाभिव्यक्ति करते हुए कहता है–

''सारा नगर लिहाफों में सिकुड़ा सोता है
पर वह मजबूरी से काँपता उठ आया है

x x x

रफू किया वह उसका स्वेटर
तीन सर्दियाँ देख चुका है
उसका जीवन भाव हीन मशीन बन गया है।''[14]

ये केवल वैयक्तिक सीमा तक ही सिकुड़ कर नहीं रहे अपितु इनकी दृष्टि सामाजिक ताने–बाने की ओर भी गयी ताकि समाज को सुधार की ओर अग्रसर किया जा सके। इन्होंने समाज के साथ राष्ट्रीय चेतना को भी अपना वर्ण्य–विषय बनाकर अपने दायित्व का निर्वहन किया ताकि देश के राजनेताओं को सावधान किया जा सके। देश की रक्षा की जा सके और उसका सामाजिक सांस्कृतिक उत्थान किया जा सके–

''आज जीत की रात
पहरूए सावधान रहना
खुले देश के द्वार
अचल दीपक समान रहना

x x x

उठता है तूफान
दीप्तिमान रहना
पहरूए सावधान रहना।''[15]

राजनीतिक शिथिलता केवल व्यक्ति ही नहीं अपितु सम्पूर्ण देश को प्रभावित करती है। ऐसे परिवेश में व्यक्ति की क्या दशा हो सकती है, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है–

''विकृत हो गए हैं
सभी मूल्य मान
सिर्फ घूमता है
रेजगारी–सा इंसान।''[16]

आज वैयक्तिक मूल्यों में विकार उत्पन्न हो गया है। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए मनुष्य किस सीमा तक जा सकता है, उसका अनुमान लगाना सम्भव नहीं है। व्यक्ति के इसी विघटन के कारण उसके जीवन में अनेक समस्याएं जन्म लेती हैं। माथुर जी कहते हैं–

''जीवन की नियति बनी
दुख की अनुभूतियाँ
आसन पड़े ही रहे
टूट गई मूर्तियाँ
बुझी, अधबुझी, जली पाँत बढ़ी वर्षों की
होम की भभूत बनी
कष्ट की विभूतियाँ।''[17]

केवल यही नहीं इन्होंने नैतिक मूल्यों के इस विघटन को 'अंधेरी दुनिया' 'एक अधनंगा आदमी', 'क्रांति की भूमिका, आदि कविताओं में अभिव्यक्त किया है। वर्तमान परिवेश में छल–फरेब, बेईमानी, स्वार्थ, निराशा, घूसखोरी, कुण्ठा आदि अनेक ज्वलन्त समस्याओं ने जन्म ले लिया। इस परिप्रेक्ष्य में यदि जातिवाद पर विचार करें तो

जातिवाद एक बड़ी समस्या के रूप में हमारे सामने आई है। आज हमारे चारों तरफ अनेक ज्वलन्त समस्यायें मुँह खोले खड़ी हैं जो अपने प्रश्न के हल की तलाश कर रही हैं–

''जब जगत् को चाहिए फुलवारियाँ
हो रही तब युद्ध की तैयारियाँ
फिर धरा सीता जलाई जा रही
फिर असुर संस्कृति जलाई जा रही।''[18]

निष्कर्षतः

कहा जा सकता है कि गिरिजाकुमार माथुर प्रयोगवादी काव्यधारा के सशक्त हस्ताक्षर हैं। इन्होंने प्राचीन रूढ़ियों और परम्पराओं का विरोध कर काव्य के क्षेत्र में सर्वथा नवीनता का सूत्रपात किया। आधुनिक युग–परिवेश में लगातार रूप से भौतिक उन्नति और प्रगति के कारण परिवर्तन हो रहे हैं। परिवर्तनों की इस लहर ने व्यक्ति को भी प्रभावित किया है। उसके अन्तस् से लगातार रूप से संवेदनाएँ समाप्त हो रही है, नैतिकता भी व्यक्ति के जीवन से पलायन करती दिखाई दे रही है। उधर व्यक्ति–स्वातंत्र्य को बढ़ावा मिल रहा है, जिससे जीवन में द्वन्द्व भाव उत्पन्न हुआ। साथ ही व्यक्ति–स्वातत्र्य की भावना से काम–भावना को बढ़ावा मिला। अतः माथुर जी ने प्रेम और काम को जीवन का अनिवार्य अंग स्वीकार किया है। इतना ही नहीं इन्होंने व्यक्तिगत समस्याओं को अपना वर्ण्य विषय बनाकर उनके जीवन–स्तर को ऊँचा उठाने का भरसक प्रयास किया व ताकि उसके जीवन से तनाव, कुण्ठा आदि समस्याओं का निराकरण किया जा सके।

संदर्भ सूत्र

1. गिरिजाकुमार माथुर, धूप के धान, पृ. 18–19
2. नामवर सिंह, हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ पृ. 46
3. गिरिजाकुमार माथुर, धूप के धान, पृ. 10
4. वही, वही, पृ. 17
5. वही, वही, पृ. 56
6. डॉ. रमेश लवानियाः हिन्दी कहानी में जीवन–मूल्य, पृ. 62
7. गिरिजाकुमार माथुर, नाश और निर्माण, पृ. 56
8. वही, वही, पृ. 65–66
9. वही, वही, वही
10. वही, नई कविताः, सीमाएँ और संभावनाएँ, पृ. 10
11. वही, कल्पांतरः लौह देश, पृ. 84
12. वही, भीतरी नदी की यात्रा, पृ. 33
13. डॉ. नगेन्द्र, आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि–माथुर, पृ. 30–31
14. गिरिजाकुमार माथुर, नाश और निर्माण, पृ. 92–93
15. वही, धूप के धान, पृ. 35
16. वही, जो बंध नहीं सका, पृ. 30
17. वही, शिलापंख चमकीले, पृ. 44
18. वही, धूप के धान, पृ. 92